P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

राजस्थान का लोक नाट्यः कठपुतली कला

सारांश

राजस्थान में कठपुतली का इतिहास काफी पुराना है और यहाँ की लोक–कलाओं तथा कथाओं से जुड़ा हुआ है। यह रंगमंच पर खेला जाने वाला प्राचीनतम मनोरंजक खेल है। क्यूंकि इसको बनाने में लकड़ी (काष्ठ) का प्रयोग होता है। इसलिये इसका नाम कठपुतली पड़ा। आजकल कठपुतली का उपयोग सिर्फ मनोरंजन नहीं रह कर विभिन्न जन जागृति के कार्यक्रम, शिक्षा कार्यक्रम आदि में भी होता है।

मुख्य शब्द : कठपुतली, रंगमंच, खेल, मनोरंजन, शिक्षा, लकड़ी।

प्रतिभा सांखला
सहायक आचार्य,
इतिहास विभाग,
जय नारायण व्यास
विश्वविद्यालय, जोधपुर,
राजस्थान, भारत

प्रस्तावना

वर्तमान में विकसित किसी भी देश की संस्कृति का मूल उद्गम् वहाँ का लोक जीवन ही है। लोक जीवन का रस ही समाज की जड़ों को सींचता है।[1] भारतीय संस्कृति पर सर्वतोभावेन विचार करते हुए पूर्व राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ.राधाकृष्णन् ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है '' ..... मानव मन में सभ्य और विकसित के साथ ही आदिम, पुरातन एवं शिशु भी उपस्थित रहता है। '' इसमें यह भी ध्वनित होता है कि आदिम मानस की पृष्ठभूमि एंव परिवेश को मद्देनजर रखकर ही सभ्याति सभ्य एंव सुसंस्कृत मानव को समझा एंव परखा जा सकता है।[2]

लोकनाट्य जन साधारण के मनोरजन के लिये उन्ही के द्वारा अभीनीत होते है, राजस्थानी लोकनाट्य खुले मंच पर अभिनीत किये जाते है। गाँव का चौराहा, कोई देवालय या चबूतरा या गाँव के मध्य कोई बड़ा आँगन ही इनका रंगमंच बन जाता है[3] इसके अन्तर्गत जो गीत या नाच है, उनके रचयिता भी अज्ञात है। सामुदायिक सौहार्द और परम्परागत अभ्यास ने इन कलाओं को जीवित रखा है। युग युगान्तर से पनपी यह विद्या राजस्थान की संस्कृति की प्राण बनी हुई है[4] राजस्थानी लोकनाट्यों को देखकर हम यह अंदाजा लगा सकते है कि हमारा समाज किन जीवन मूल्यों को लेकर जीता रहा है।[5]

विभिन्न प्रकार कठपुतलियाँ

राजस्थानी लोक साहित्य में वीरता, प्रेम और भक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। यहॉ का समाज वस्तुतः वीरता और प्रेम के सामंजस्य को समेटे खड़ा है।[6] लोक जीवन ने जब मनोरजन के लिये अपने साधन चुने तो वे भी भांति–भांति के रहे। इसलिये राजस्थान में लोकनाट्यों की सुदीर्घ परम्परा में कई नाट्य रूप प्रचलित रहें। ख्याल, पड़, कठपुतली, तुर्रा कलंगी एवं गवरी के साथ–साथ रावलों की रम्मलें भी यहाँ का एक विशिष्ट लोकनाट्य माना गया है।[7] लोकनाट्य को हम तीन भागों में बाँट सकते है –

1. आनुष्ठिनिक लोक नाट्य
2. उत्सव के लोक नाट्य
3. व्यावसायिक लोक नाट्य

व्यावसायिक लोक नाट्य में राजस्थान की प्रसिद्ध लोक नाट्य कला कठपुतली को लिया जा सकता है। [8]

कठपुतली कला

लोक नाटकों के विकास में कठपुतली कला का खास महत्व माना जाता है। राजस्थान में इस कला–शैली की गौरव शाली परपरा रही है।[9] रामायण, महाभारत, पंचतंत्र आदि ग्रंथों में पुतलियों को उल्लेख है और उनसे संदेशवाहक का काम भी लिया गया है। महाभारत में (अर्जुन) वृहन्नला द्वारा उत्तरा को पुतलियां सिखाने का उल्लेख है इसी ग्रंथ में 'रूपजीवन' शब्द पुतलियों के खेल–तमाशे के लिये कई बार आया है। 'वीर करीता' नामक एक भारतीय ग्रथ में कहा गया कि पार्वती जी के पास एक बहुत ही मनमोहिनी पुतली थी जो उन्होने शिवजी से छिपाकर रखी थी। पंचमंत्र में भी मानवी करतब करने वाली पुतलियों के बारें में बताया गया है। विक्रमादित्य के समय 'सिंहासन बत्तीसी' नामक एक सिंहासन था जिसकी 32 पुतलियां रात को अपने राग–रंग से सम्राट को रिझाती थी। पिरचेल जैसे विद्वान का कहना है कि विश्व की समस्त पुतलियों का उद्‌गम स्थल भारत है। भारत में कठपुतली कला की सात शैलियां है। इनमें

से राजस्थान की सूत्र संचालित पुतालियां, दक्षिण भारत की बम्बोलोटम पुतलियां, आन्ध्र की छाया एंव काष्ठ पुतलियां, बंगाल की छड़ आदि पुतालियां प्रमुख है।[10]

कुछ वर्ष पहले तक राजस्थान के गाँव–गाँव में कठपुतली का खेल दिखाया जाता था राजस्थान में कठपुतली का इतिहास काफी पुराना है और यहाँ कि लोक कलाओं तथा कथाओं से जुड़ा है।[11] मारवाड़ के कठपुतली के खेल की मुख्य विषय वस्तु प्राचीन काल के राजपूत नायकों के वीरता पूर्ण कार्य है। कठपुतलियों लोगों के दृश्य साहित्य का प्राचीन स्वरूप है। खेल काव्य रूप में चलने वाला कथा–वर्णन के रूप में होता है।[12]

कठपुतली नाट्य कला के चार रूप प्रचलित है

1. दस्ताना पुतालियां
2. सूत्र संचालित पुतलियां
3. छड़ पुतलियां
4. छाया एंव काष्ठ पुतलियां [13]

राजस्थानी कठपुतलियों की अपनी कई विशेषताएँ रही हैं। सूत्रों द्वारा संचालित होने के कारण हाथ की अंगुलियां ही इन पुतलियों की एक मात्र प्राण–प्रतिष्ठापक, निर्यता तथा विधायक होती है। काठ की बनी इन पुतलियों के हाथ–पैर न होकर केवल घड़ ही होता है। बाद में कपड़े तथा रूई की सहायता से इनके हाथ बना लिये जाते है। पांवों की जगह नीचे लम्बा झग्गा पहना दिया जाता है। जिसे नाना कौर किनारी की संख्या देकर आकर्षक बना लिया जाता है।[14] यह कठपुतलियाँ धागों से संचालित होती है। चेहरे पर सिर के पीछे तथा कानों के पास से धागे बाँधकर खीचे जाते है। इन धागों को कठपुतली चलाने वाला अपनी अंगुलियों पर बांधकर पुतली नचाता है। जिसे पीपाड़ी कहते है। वो मंच पर दर्शको को दिखायी नही देती है। कठपुतली की आवाज में वो सीटी बजाकर ही अपनी बात कहता है। जिसे मंच के सामने बैठा ढोलक बजाने वाला अरथाता रहता है।[15] वे पुतालियां अच्छी समझी जाती है जो लूणी, सालर, खिन्नी, आम, दखनी, नीम तथा सेमला की लकड़ियों से बनाई जाती है।[16] इन कठपुलियों का आकार एक फुट से डेढ़ फुट के बीच होता है। परम्परागत कठपुतली नाट्य में केवल नाटक 'अमर सिह राठौड़' रो खेल ही अब शेष बचा है।[17] पहले राज्य में ज्यादातर अमरसिंह राठौड़, पृथ्वीराज, लैला–मंजनू की कथा ही कठपुतली खेल में दिखाई जाती थी लेकिन अब परिवार नियोजन, प्रौढ़ शिक्षा, राष्ट्रीय एकता के साथ–साथ हास्य, व्यंग्य एंव मनोरजक कार्यक्रम दिखाये जाने लगे हैं। [18]

राजस्थान की कठपुतलियों भाटो तथा नटों द्वारा दिखाई जाती है। ये नट पहले राजा–महाराजाओं के दरबार की शोभा बढ़ाते थे। धीरे–धीरे इनका सामाजिक और आर्थिक स्तर गिरता चला गया। कठपुतली नट, कठपुतलियों के माध्यम से नाट्य कला का प्रदर्शन करते है। किसी समय राजस्थान में नटों की संख्या काफी थी किंतु अब ये कम संख्या में रह गये है।[19] ऐसा कहा जाता है। कि प्रारम्भ में ये कठपुतली भाट, भाट नहीं होकर नट थे। ब्रह्म के मुख से अपनी उत्पति मानते हुए इन लोगो का ऐसा कहना है कि ब्रह्मा ने जन मनोरजन के लिये इनकी उत्पत्ति कर नाचने गाने तथा नाना प्रकार की कलाबाजियाँ एवं खेल तमाशे करने का हुक्म बख्शा[20] इन कठपुतलियों का प्रारंभ रूप कुछ और ही था। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि सर्वप्रथम कठपुतली ललने के रूप में अलग–अलग हाथ–पांव तथा घड़ हाथों की पांचो अंगुलियों में फंसा कर बाल्य–क्रीड़ा के विविध रूप प्रदर्शित किये जाते थे। इन प्रदर्शनों में बच्चे काफी उत्साह एंव दिलचस्पी से भाग लेते। आज भी कठपुतली भाट जब सर्वप्रथम कठपुतली नचाना सीखता है तो उसे अभ्यास के लिए ललवा दिया जाता है।[21] राजस्थान में कठपुतली खेल में हर क्षेत्र के अनुसार भाषा और क्षेत्रीय रंगत रहती है। यहॉ कठपुतली के खेल में कथाएँ, संवाद या गीत सभी प्रदर्शन साधारण जीवन के अंग होते है और अपने आप में लोक कला के उत्कृष्ठ नमूने माने जाते है।[22]

कठपुतली का अपना कोई विशेष मंच नहीं होता। गाँवों की गलियाँ, चौराहे, चबूतरे, देवरे तथा दरीखाने आदि ऐसे स्थान होते है जहॉ कठपुतली भाट अपनी कठपुतली की पिटारी खोल उनकी कानाफुंसिया कराता है। साधारण तथा खाट ही मंच का काम देता है। खाट न मिलने पर बांस का काम चलाऊ मंच खड़ा कर दिया जाता है। इसके आगे सात बारणों (दरवाजों) तथा आठ खंभो वाली लाल कपड़े की तिबारी लगा दी जाती है। इसे कठपुतली वाले 'ताजमहल' कहते है। इस तिबारी के ऊपर ही एक कोने में सूरज तथा दूसरे कोने में चाँद लगा दिये जाते हैं जो कपड़े के होते है।[23]

राजस्थान में ऐसे कई परिवार है जिनकी कमाई का एक मात्र साधन कठपुतली बना कर बेचना है और खेल दिखाना है लेकिन आज जिस तरह से कठपुतली खेल की लोकप्रियता घटती जा रही है उन हालत में ये परिवार अपने पुश्तेनी धंधे को छोड़ रहे है आज काठ, चमड़े और कपड़े की कठपुतली को अपने इशारों पर नचा कर लोगों का मनोरजन करने वाले कठपुतली फनकार इस काल में कद्रदानों की घटती संख्या के कारण अपने पुश्तैनी धंधे से मुँह फेर रहे है।[24] पिछले दिनों संगीत नाटक अकादमी ने इस नाट्य रूप को पुनर्जीवित करने की दिशा में महत्वपूर्ण पहल की है और परम्परागत कठपुतली चलाने वालों के साथ नाटककारों एंव निर्देशकों को जोड़कर कुछ नये कठपुतली नाटक तैयार किये हैं।[25]

गत कुछ वर्षो से श्री देवीलाल सामर ने इस कला के विकास का बीड़ा उठाया। भारतीय लोक कला मडल में भी सामर जी ने कठपुतली विभाग की स्थापना कर कई नये प्रयोग किये। सामर जी कठपुतली कला विषयक हाल ही में एक पुस्तिक भी लिखी जो अपने विषय की इस क्षेत्र की पहली पुस्तिक कही जाती है।[26] आवश्यकता है राजस्थान की परम्परागत कठपुतली कला को टूटने से बचाने की, इसमें युगानुसार परिवर्तन व सुधार की। इस दशा में सरकार यदि सजगता बरते तो ये कला दम तोड़ने से बचाई जा सकती है।[27]

संगठित किए जाने पर कठपुतली नाट्य शैली के अंदर असीम संभावनाएँ है। उदयपुर के लोक कला मंडल तथा दिल्ली की संगीत नाटक अकादमी ने 'रामायण की कहानी' तथा पृथ्वीराज और पृथ्वीराज' नामक दो नए कठपुतली प्रदर्शनों का आयोजन कर इस संभावना को

प्रमाणित कर दिया है। हाल में लोक कला मंडल ने इस कला के लिये अलग विभाग की स्थापना भी की है। इससे कठपुतली कला को निश्चय ही प्रोत्साहन मिलेगा। लोककला मंडल द्वारा प्रेरित और आयोजित कठपुतली प्रदर्शनी ने विदेशी दर्शको को भी प्रभावित किया है।

अध्ययन का उद्देश्य

राजस्थान में लोकनाट्य कठपुतली का इतिहास काफी पुरानी है तथा यहाँ की लोक कलाओं और लोक कथाओं से भी जुड़ा हुआ है। लेकिन आज राजस्थन में कठपुतली के कद्रदानों की संख्या भारी मात्रा में घट रहीं है। मेरे शोध पत्र का उद्देश्य है कि राजस्थान की इस लोक नाट्य शैली कठपुतली कला को टूटने से बचाने के लिए आवश्यकता अनुसार परिवर्तन एंव सुधार किये जाये। क्योकि संगठित किए जाने पर कठपुतली कला के अंदर असीम संभावनाएं है। साथ ही सरकार से भी अपेक्षा की जाती है कि इस दशा में यदि सजगता बरती जाएं तो ये कला दम तोड़ने से बचाई जा सकती हैं।

निष्कर्ष

कठपुतली नाट्य शैली का एतिहासिक अध्ययन कर इस शोध पत्र में विस्तार से कठपुतलियों के बारे में बताया गया है कठपुतली नाट्य प्राचीन भारत में बहुत महत्वपूर्ण थे इन नाट्यों के द्वारा पहले ज्यादातर अमरसिंह राठौड़, पृथ्वीराज चौहान, लैला मंजनू की कथाएं ही कठपुतली खेल में दिखाई जाती थी लेकिन अब सरकार के प्रयासों से परिवार नियोजन, प्रौढ़ शिक्षा, राष्ट्रीय एकता के साथ–साथ हास्य, व्यंग्य और मनोरजक कथाऐं भी दिखायी जाने लगी है। इसी सन्दर्भ में लोक कला मंडल ने इस कला के लिए अलग से विभाग की स्थापना भी की हैं। इससे कठपुतली नाट्य शैली को निश्चय ही प्रोत्साहन मिलगा। क्योंकि लोक कला मंडल द्वारा प्रेरित और आयोजित कठपुतली के प्रदर्शनों ने दर्शकों व बच्चों को भी प्रभावित किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *रंगयोग सजृन शताब्दी – प्रधान संपादकः रमेश बोराणा, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर (लोक कला विशेषांक) पृ.सं. XI*
2. *वही, पृ.सं. (1)*
3. *राजस्थान का इतिहास, कला, संस्कृति, साहित्य, परम्परा एवं विरासत (संपादक :– डॉ. हुकम चन्द जैन, डॉ. नारायणलाल माली)। पृ.सं. 276*
4. *राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास – डॉ गोपीनाथ शर्मा, पृ.सं. 309*
5. *रंगयोग (लोक कला विशेषांक) सजृन शताब्दी*
6. *राजस्थान की रम्मते– रमेश बोराणा। पृ.सं. 01*
7. *वहीं, पृ.सं. (1–2)*
8. *रंगयोग (लोक कला विशेषांक) पृ.सं. – 107*
9. *राजस्थान (लोक संस्कृति और साहित्य)–डी.आर. आहूजा। पृ.सं. –122*
10. *राजस्थान जिलेवार सांस्कृतिक एंव ऐतिहासिक अध्ययन : मोहनलाल गुप्ता पृ.सं.– 79*
11. *राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा – डॉ चन्द्रमणि सिंह। पृ.सं. – 269*
12. *राजस्थान (लोक संस्कृति और साहित्य) – डी.आर. आहूजा। पृ.सं. – 103*
13. *राजस्थान की रम्मतें – रमेश बोराणा। पृ.सं. –09*
14. *परम्परा–सम्पादक–नारायणसिंह भाटी (राजस्थानी लोक साहित्य) पृ.सं. –13*
15. *रंगयोग–लोक कलाविशेषांक, सजृन शताब्दी, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी लोक नाट्य–डॉ. अर्जुन देव चारण, पृ.सं. (112–113)*
16. *परम्परा, सम्पादक नारायण सिंह भाटी (राजस्थानी लोक साहित्य) पृ.सं. – 13*
17. *रंगयोग – लोक कला विशेषांक । पृ.सं. – 113*
18. *राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा – डा. चन्द्रमणि सिंह। पृ.सं. 269*
19. *राजस्थान जिलेवार सांस्कृतिक एंव ऐतिहासिक अध्ययन, मोहनलाल गुप्ता। पृ.सं. – 79*
20. *परम्परा, सम्पादक नारायण सिंह भाटी (राजस्थानी लोक साहित्य) पृ.सं. – 13*
21. *वहीं, पृ.सं. – 13*
22. *राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा – डॉ चन्द्रमणि सिंह । पृ.सं. 269–276*
23. *परम्परा, सम्पादक नारायण सिंह भाटी (राजस्थानी लोक साहित्य) पृ.सं. 14–15*
24. *राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा – डॉ चन्द्रमणि सिंह – पृ.सं. – 270*
25. *रंगयोग लोककला विशेषांक (सजृन शताब्दी) पृ.सं. –113*
26. *परम्परा, सम्पादक :– नारायणसिंह भाटी (राजस्थानी लोक साहित्य) पृ.सं. – 15*
27. *राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा – डॉ. चन्द्रमणि सिंह। पृ.सं. – 271*
28. *राजस्थान लोक संस्कृति और साहित्य – डी.आर. आहूजा। पृ.सं– 124*